****

Subhadra Kumari Chauhan

**Born** 1904

**Died** 1948x

**Poetry:**

* **मेरा नया बचपन**

बार-बार आती है मुझको मधुर याद बचपन तेरी।  
गया ले गया तू जीवन की सबसे मस्त खुशी मेरी॥  
चिंता-रहित खेलना-खाना वह फिरना निर्भय स्वच्छंद।   
कैसे भूला जा सकता है बचपन का अतुलित आनंद?  
ऊँच-नीच का ज्ञान नहीं था छुआछूत किसने जानी?  
बनी हुई थी वहाँ झोंपड़ी और चीथड़ों में रानी॥  
किये दूध के कुल्ले मैंने चूस अँगूठा सुधा पिया।   
किलकारी किल्लोल मचाकर सूना घर आबाद किया॥  
रोना और मचल जाना भी क्या आनंद दिखाते थे।  
बड़े-बड़े मोती-से आँसू जयमाला पहनाते थे॥  
मैं रोई, माँ काम छोड़कर आईं, मुझको उठा लिया।   
झाड़-पोंछ कर चूम-चूम कर गीले गालों को सुखा दिया॥  
दादा ने चंदा दिखलाया नेत्र नीर-युत दमक उठे।  
धुली हुई मुस्कान देख कर सबके चेहरे चमक उठे॥  
वह सुख का साम्राज्य छोड़कर मैं मतवाली बड़ी हुई।   
लुटी हुई, कुछ ठगी हुई-सी दौड़ द्वार पर खड़ी हुई॥  
लाजभरी आँखें थीं मेरी मन में उमँग रँगीली थी।  
तान रसीली थी कानों में चंचल छैल छबीली थी॥  
दिल में एक चुभन-सी थी यह दुनिया अलबेली थी।   
मन में एक पहेली थी मैं सब के बीच अकेली थी॥  
मिला, खोजती थी जिसको हे बचपन! ठगा दिया तूने।  
अरे! जवानी के फंदे में मुझको फँसा दिया तूने॥  
सब गलियाँ उसकी भी देखीं उसकी खुशियाँ न्यारी हैं।   
प्यारी, प्रीतम की रँग-रलियों की स्मृतियाँ भी प्यारी हैं॥  
माना मैंने युवा-काल का जीवन खूब निराला है।  
आकांक्षा, पुरुषार्थ, ज्ञान का उदय मोहनेवाला है॥  
किंतु यहाँ झंझट है भारी युद्ध-क्षेत्र संसार बना।   
चिंता के चक्कर में पड़कर जीवन भी है भार बना॥  
आ जा बचपन! एक बार फिर दे दे अपनी निर्मल शांति।  
व्याकुल व्यथा मिटानेवाली वह अपनी प्राकृत विश्रांति॥  
वह भोली-सी मधुर सरलता वह प्यारा जीवन निष्पाप।   
क्या आकर फिर मिटा सकेगा तू मेरे मन का संताप?  
मैं बचपन को बुला रही थी बोल उठी बिटिया मेरी।  
नंदन वन-सी फूल उठी यह छोटी-सी कुटिया मेरी॥  
‘माँ ओ’ कहकर बुला रही थी मिट्टी खाकर आयी थी।   
कुछ मुँह में कुछ लिये हाथ में मुझे खिलाने लायी थी॥  
पुलक रहे थे अंग, दृगों में कौतुहल था छलक रहा।  
मुँह पर थी आह्लाद-लालिमा विजय-गर्व था झलक रहा॥  
मैंने पूछा ‘यह क्या लायी?’ बोल उठी वह ‘माँ, काओ’।   
हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से मैंने कहा – ‘तुम्हीं खाओ’॥  
पाया मैंने बचपन फिर से बचपन बेटी बन आया।  
उसकी मंजुल मूर्ति देखकर मुझ में नवजीवन आया॥  
मैं भी उसके साथ खेलती खाती हूँ, तुतलाती हूँ।   
मिलकर उसके साथ स्वयं मैं भी बच्ची बन जाती हूँ॥  
जिसे खोजती थी बरसों से अब जाकर उसको पाया।  
भाग गया था मुझे छोड़कर वह बचपन फिर से आया॥

* **यह कदम्ब का पेड़**

यह कदंब का पेड़ अगर माँ होता यमुना तीरे।  
मैं भी उस पर बैठ कन्हैया बनता धीरे-धीरे॥  
ले देतीं यदि मुझे बांसुरी तुम दो पैसे वाली।  
किसी तरह नीची हो जाती यह कदंब की डाली॥  
तुम्हें नहीं कुछ कहता पर मैं चुपके-चुपके आता।  
उस नीची डाली से अम्मा ऊँचे पर चढ़ जाता॥  
वहीं बैठ फिर बड़े मजे से मैं बांसुरी बजाता।   
अम्मा-अम्मा कह वंशी के स्वर में तुम्हे बुलाता॥  
बहुत बुलाने पर भी माँ जब नहीं उतर कर आता।  
माँ, तब माँ का हृदय तुम्हारा बहुत विकल हो जाता॥  
तुम आँचल फैला कर अम्मां वहीं पेड़ के नीचे।  
ईश्वर से कुछ विनती करतीं बैठी आँखें मीचे॥  
तुम्हें ध्यान में लगी देख मैं धीरे-धीरे आता।  
और तुम्हारे फैले आँचल के नीचे छिप जाता॥  
तुम घबरा कर आँख खोलतीं, पर माँ खुश हो जाती।   
जब अपने मुन्ना राजा को गोदी में ही पातीं॥  
इसी तरह कुछ खेला करते हम-तुम धीरे-धीरे।  
यह कदंब का पेड़ अगर माँ होता यमुना तीरे॥

* **प्रियतम से**

बहुत दिनों तक हुई परीक्षा  
अब रूखा व्यवहार न हो।  
अजी, बोल तो लिया करो तुम  
चाहे मुझ पर प्यार न हो॥  
जरा जरा सी बातों पर  
मत रूठो मेरे अभिमानी।  
लो प्रसन्न हो जाओ  
गलती मैंने अपनी सब मानी॥  
मैं भूलों की भरी पिटारी  
और दया के तुम आगार।  
सदा दिखाई दो तुम हँसते  
चाहे मुझ से करो न प्यार॥

* **मेरे पथिक**

हठीले मेरे भोले पथिक!  
किधर जाते हो आकस्मात।  
अरे क्षण भर रुक जाओ यहाँ,  
सोच तो लो आगे की बात॥  
यहाँ के घात और प्रतिघात,   
तुम्हारा सरस हृदय सुकुमार।  
सहेगा कैसे? बोलो पथिक!   
सदा जिसने पाया है प्यार॥  
जहाँ पद-पद पर बाधा खड़ी,  
निराशा का पहिरे परिधान।  
लांछना डरवाएगी वहाँ,  
हाथ में लेकर कठिन कृपाण॥  
चलेगी अपवादों की लूह,   
झुलस जावेगा कोमल गात।  
विकलता के पलने में झूल,   
बिताओगे आँखों में रात॥  
विदा होगी जीवन की शांति,  
मिलेगी चिर-सहचरी अशांति।  
भूल मत जाओ मेरे पथिक,  
भुलावा देती तुमको भ्रांति॥

* **मुरझाया फूल**

यह मुरझाया हुआ फूल है,  
इसका हृदय दुखाना मत।  
स्वयं बिखरने वाली इसकी  
पंखड़ियाँ बिखराना मत॥  
गुजरो अगर पास से इसके  
इसे चोट पहुँचाना मत।  
जीवन की अंतिम घड़ियों में  
देखो, इसे रुलाना मत॥  
अगर हो सके तो ठंडी  
बूँदें टपका देना प्यारे!  
जल न जाए संतप्त-हृदय  
शीतलता ला देना प्यारे!!

* **पूछो**

विफल प्रयत्न हुए सारे,  
मैं हारी, निष्ठुरता जीती।  
अरे न पूछो, कह न सकूँगी,  
तुमसे मैं अपनी बीती॥  
नहीं मानते हो तो जा   
उन मुकुलित कलियों से पूछो।  
अथवा विरह विकल घायल सी  
भ्रमरावलियों से पूछो॥  
जो माली के निठुर करों से  
असमय में दी गईं मरोड़।  
जिनका जर्जर हृदय विकल है,  
प्रेमी मधुप-वृंद को छोड़॥  
सिंधु-प्रेयसी सरिता से तुम   
जाके पूछो मेरा हाल।  
जिसे मिलन-पथ पर रोका हो,   
कहीं किसी ने बाधा डाल॥

* **समर्पण**

सूखी सी अधखिली कली है  
परिमल नहीं, पराग नहीं।  
किंतु कुटिल भौंरों के चुंबन  
का है इन पर दाग नहीं॥  
तेरी अतुल कृपा का बदला  
नहीं चुकाने आई हूँ।  
केवल पूजा में ये कलियाँ  
भक्ति-भाव से लाई हूँ॥  
प्रणय-जल्पना चिन्त्य-कल्पना  
मधुर वासनाएं प्यारी।  
मृदु-अभिलाषा, विजयी आशा  
सजा रहीं थीं फुलवारी॥  
किंतु गर्व का झोंका आया  
यदपि गर्व वह था तेरा।  
उजड़ गई फुलवारी सारी  
बिगड़ गया सब कुछ मेरा॥  
बची हुई स्मृति की ये कलियाँ  
मैं समेट कर लाई हूँ।  
तुझे सुझाने, तुझे रिझाने  
तुझे मनाने आई हूँ॥  
प्रेम-भाव से हो अथवा हो  
दया-भाव से ही स्वीकार।  
ठुकराना मत, इसे जानकर  
मेरा छोटा सा उपहार॥

* **चिंता**

लगे आने, हृदय धन से  
कहा मैंने कि मत आओ।  
कहीं हो प्रेम में पागल  
न पथ में ही मचल जाओ॥  
कठिन है मार्ग, मुझको  
मंजिलें वे पार करनीं हैं।  
उमंगों की तरंगें बढ़ पड़ें  
शायद फिसल जाओ॥  
तुम्हें कुछ चोट आ जाए  
कहीं लाचार लौटूँ मैं।  
हठीले प्यार से व्रत-भंग  
की घड़ियाँ निकट लाओ॥

"ओ मेरे आदर्शवादी मन,   
ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन,   
अब तक क्या किया?   
जीवन क्या जिया!!   
  
उदरम्भरि बन अनात्म बन गये,   
भूतों की शादी में क़नात-से तन गये,   
किसी व्यभिचारी के बन गये बिस्तर,   
  
दुःखों के दाग़ों को तमग़ों-सा पहना,   
अपने ही ख़यालों में दिन-रात रहना,   
असंग बुद्धि व अकेले में सहना,   
ज़िन्दगी निष्क्रिय बन गयी तलघर,   
अब तक क्या किया,   
जीवन क्या जिया!!   
बताओ तो किस-किसके लिए तुम दौड़ गये,   
करुणा के दृश्यों से हाय! मुँह मोड़ गये,   
बन गये पत्थर,   
बहुत-बहुत ज़्यादा लिया,   
दिया बहुत-बहुत कम,   
मर गया देश, अरे जीवित रह गये तुम!!   
लो-हित-पिता को घर से निकाल दिया,   
जन-मन-करुणा-सी माँ को हंकाल दिया,   
स्वार्थों के टेरियार कुत्तों को पाल लिया,   
भावना के कर्तव्य--त्याग दिये,   
हृदय के मन्तव्य--मार डाले!   
बुद्धि का भाल ही फोड़ दिया,   
तर्कों के हाथ उखाड़ दिये,   
जम गये, जाम हुए, फँस गये,   
अपने ही कीचड़ में धँस गये!!   
विवेक बघार डाला स्वार्थों के तेल में   
आदर्श खा गये!   
  
अब तक क्या किया,   
जीवन क्या जिया,   
ज़्यादा लिया और दिया बहुत-बहुत कम   
मर गया देश, अरे जीवित रह गये तुम..."   
  
मेरा सिर गरम है,   
इसीलिए गरम है।   
सपनों में चलता है आलोचन,   
विचारों के चित्रों की अवलि में चिन्तन।   
निजत्व-माफ़ है बेचैन,   
क्या करूँ, किससे कहूँ,   
कहाँ जाऊँ, दिल्ली या उज्जैन?   
वैदिक ऋषि शुनःशेप के   
शापभ्रष्ट पिता अजीर्गत समान ही   
व्यक्तित्व अपना ही, अपने से खोया हुआ   
वही उसे अकस्मात् मिलता था रात में,   
पागल था दिन में   
सिर-फिरा विक्षिप्त मस्तिष्क।   
  
हाय, हाय!   
उसने भी यह क्या गा दिया,   
यह उसने क्या नया ला दिया,   
प्रत्यक्ष,   
मैं खड़ा हो गया   
किसी छाया मूर्ति-सा समक्ष स्वयं के   
होने लगी बहस और   
लगने लगे परस्पर तमाचे।   
छिः पागलपन है,   
वृथा आलोचन है।   
गलियों में अन्धकार भयावह--   
मानो मेरे कारण ही लग गया   
मॉर्शल-लॉ वह,   
मानो मेरी निष्क्रिय संज्ञा ने संकट बुलाया,   
मानो मेरे कारण ही दुर्घट   
हुई यह घटना।   
चक्र से चक्र लगा हुआ है....   
जितना ही तीव्र है द्वन्द्व क्रियाओं घटनाओं का   
बाहरी दुनिया में,   
उतनी ही तेजी से भीतरी दुनिया में,   
चलता है द्वन्द्व कि   
फ़िक्र से फ़िक्र लगी हुई है।   
आज उस पागल ने मेरी चैन भुला दी,   
मेरी नींद गवाँ दी।   
  
मैं इस बरगद के पास खड़ा हूँ।   
मेरा यह चेहरा   
घुलता है जाने किस अथाह गम्भीर, साँवले जल से,   
झुके हुए गुमसुम टूटे हुए घरों के   
तिमिर अतल से   
घुलता है मन यह।   
रात्रि के श्यामल ओस से क्षालित   
कोई गुरू-गम्भीर महान् अस्तित्व   
महकता है लगातार   
मानो खँडहर-प्रसारों में उद्यान   
गुलाब-चमेली के, रात्रि-तिमिर में,   
महकते हों, महकते ही रहते हों हर पल।   
किन्तु वे उद्यान कहाँ हैं,   
अँधेरे में पता नहीं चलता।   
मात्र सुगन्ध है सब ओर,   
पर, उस महक--लहर में   
कोई छिपी वेदना, कोई गुप्त चिन्ता   
छटपटा रही है।

# दो0-संत कहहि असि नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव। होइ न बिमल बिबेक उर गुर सन किएँ दुराव॥45॥ अस बिचारि प्रगटउँ निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू॥ रास नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा॥ संतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ग्यान गुन रासी॥ आकर चारि जीव जग अहहीं। कासीं मरत परम पद लहहीं॥ सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेसु करत करि दाया॥ रामु कवन प्रभु पूछउँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही॥ एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित बिदित संसारा॥ नारि बिरहँ दुखु लहेउ अपारा। भयहु रोषु रन रावनु मारा॥ दो0-प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि। सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु बिबेकु बिचारि॥46॥ जैसे मिटै मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी॥ जागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई॥ राममगत तुम्ह मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारी मैं जानी॥ चाहहु सुनै राम गुन गूढ़ा। कीन्हिहु प्रस्न मनहुँ अति मूढ़ा॥ तात सुनहु सादर मनु लाई। कहउँ राम कै कथा सुहाई॥ महामोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥ रामकथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना॥ ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी॥ दो0-कहउँ सो मति अनुहारि अब उमा संभु संबाद। भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद॥47॥ एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गए कुंभज रिषि पाहीं॥ संग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी॥ रामकथा मुनीबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी॥ रिषि पूछी हरिभगति सुहाई। कही संभु अधिकारी पाई॥ कहत सुनत रघुपति गुन गाथा। कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा॥ मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी। चले भवन सँग दच्छकुमारी॥ तेहि अवसर भंजन महिभारा। हरि रघुबंस लीन्ह अवतारा॥ पिता बचन तजि राजु उदासी। दंडक बन बिचरत अबिनासी॥ दो0-ह्दयँ बिचारत जात हर केहि बिधि दरसनु होइ। गुप्त रुप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सबु कोइ॥48(क)॥ सो0-संकर उर अति छोभु सती न जानहिं मरमु सोइ॥ तुलसी दरसन लोभु मन डरु लोचन लालची॥48(ख)॥ रावन मरन मनुज कर जाचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साचा॥ जौं नहिं जाउँ रहइ पछितावा। करत बिचारु न बनत बनावा॥ एहि बिधि भए सोचबस ईसा। तेहि समय जाइ दससीसा॥ लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरत सोइ कपट कुरंगा॥ करि छलु मूढ़ हरी बैदेही। प्रभु प्रभाउ तस बिदित न तेही॥ मृग बधि बन्धु सहित हरि आए। आश्रमु देखि नयन जल छाए॥ बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई॥ कबहूँ जोग बियोग न जाकें। देखा प्रगट बिरह दुख ताकें॥ दो0-अति विचित्र रघुपति चरित जानहिं परम सुजान। जे मतिमंद बिमोह बस हृदयँ धरहिं कछु आन॥49॥ संभु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हियँ अति हरपु बिसेषा॥ भरि लोचन छबिसिंधु निहारी। कुसमय जानिन कीन्हि चिन्हारी॥ जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चलेउ मनोज नसावन॥ चले जात सिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता॥ सतीं सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा संदेहु बिसेषी॥ संकरु जगतबंद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥ तिन्ह नृपसुतहि नह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधमा॥ भए मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहति न रोकी॥ दो0-ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद। सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत वेद॥